26

गया जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन का विवाद

गया जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना के दिवस से ही मैं उससे जुड़ा था। उसमें सहयोगी थे गया के मेरे व्यापारी मित्र श्री गोपाल प्रसाद अग्रवाल और बिहार के सुप्रसिद्ध कवि श्री हंसकुमार तिवारी। 1946-47 में सुप्रसिद्ध नाटककार श्री जगदीश चंद्र माथुर आइ. सी. एस जिलाधिकारी के रूप में पदस्थापित थे। साहित्यकार के नाते मुझसे उनकी काफी घनिष्ठता हो गयी थी। मेरे सुझाव पर उन दिनों सरकार द्वारा नियंत्रित नगरपालिका द्वारा गया के चौक स्थित आजाद पार्क में उन्होंने साहित्य सम्मेलन के भवन के लिए भूमि आबंटित करवा दी किंतु नगरपालिका के अधिकारी जे. एन. सहाय ने यह शर्त लगा दी कि पार्क में भवन खंभों पर खड़ा करके बनाया जाय जिससे नीचे की जगह जनता के लिये अवरुद्ध न हो। मुझे तो किसी भी शर्त पर टिकने के लिए आधार चाहिए था, इस ऊटपटाँग शर्त को भी स्वीकार करके मैंने माथुर साहब के हाथों से ही उस भूमि पर शिलान्यास करवा दिया। माथुर साहब के चले जाने के बाद, गया जिला कांग्रेस के अध्यक्ष श्री जगेश्वर प्रसाद 'खलिश' ने जमीन पर भवन बनाने का संशोधन नगरपालिका की शर्तों में करवा दिया। कुछ दिनों बाद नगरपालिका का चुनाव हुआ और वह मेरे नियंत्रण में आ गयी और चंदे द्वारा मैंने वह भवन बनवा दिया। उसके बाद श्री कामता सिंहजी से मेरा परिचय हुआ और गया जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन में उनकी अध्यक्षता में कई बड़े-बड़े आयोजन हुए जिसमें बिहार प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन का इक्कीसवाँ अधिवेशन प्रमुख था जिसकी चर्चा मैं कर चुका हूँ।

कामताबाबू के देहावसान के बाद उनके सुपुत्र श्री शंकरदयाल सिंहजी ने साहित्य सम्मेलन में उत्साह से भाग लेना प्रारंभ किया। वे प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन से भी जुड़े थे अतः उनके आने से एक प्रकार से वहाँ कामता बाबू के रिक्त स्थान की पूर्ति हो गयी। शंकरदयालजी ने जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन का अष्टम अधिवेशन अपने नगर औरंगाबाद में आमंत्रित किया जो उन दिनों गया

जिला का ही अंग था। इस अधिवेशन के लिए पटना के प्रमुख साहित्यकार श्री ब्रजकिशोर नारायण को सभापति-पद के लिए चुना गया। श्री ब्रजकिशोर नारायण के सभापति-पद की सूचना मिलते ही गया के मेरे मित्र श्री हंसकुमार तिवारी बौखला गये। ब्रजकिशोर नारायण से उनका व्यक्तिगत मनोमालिन्य था और वे इसको सहन नहीं कर सके कि उनके नगर, गया के जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन, जिससे वे प्रारंभ से ही जुड़े हुए थे, का सभापतित्व उनके विरोधी के हाथों में आ जाय। उन्होंने मेरे आगे धरना-सा दे दिया कि मैं इसे रोक दूँ। पर मैं विवश था क्योंकि मेरे आदरणीय मित्र कामतासिंहजी के पुत्र होने के नाते शंकरदयालजी मेरे भी पुत्रवत् थे तथा अपनी किशोरावस्था से ही मेरे स्नेहभाजन थे। मैंने बहुत प्रयत्न किया पर तिवारीजी माने नहीं और श्री गोपालप्रसाद अग्रवाल के सहयोग से उन्होंने साहित्य सम्मेलन का अलग अधिवेशन जानकी वल्लभ शास्त्री को अध्यक्ष बनाकर करने का प्रयास किया। इस संबंध में हम लोगों के बीच थोड़ी अदालती कारवाई भी हुई पर अंत में ब्रजकिशोर नारायण की अध्यक्षता में औरंगाबाद का अधिवेशन बड़ी धूमधाम से संपन्न होने के बाद वे गया में गया जिला साहित्य सम्मेलन के नाम से वही अष्टम अधिवेशन दुबारा करने में समर्थ हो गये। इस प्रकार गया के साहित्यिक दो दलों में विभक्त हो गये। यद्यपि एक दल गुलाबजीका दल और दूसरा दल तिवारीजी का दल कहलाता था और साहित्यिक दो भागों में विभक्त थे परंतु मैंने तिवारीजी की और अपनी मित्रता में कोई पार्थक्य नहीं आने दिया। साल-छः महीनों के बाद यह विवाद स्वयं ही समाप्त हो गया और गया के सभी साहित्यिक पुनः एक साथ दिखाई देने लगे।

मेरा अपना अनुभव है कि किसी भी सार्वजनिक विवाद में यदि आप व्यक्तिगत कटुता से अपने को मुक्त रखते हैं तो समय स्वयं ही बीच की खाई को पाट देता है। मैंने नगरपालिका के अपने चार वर्षों के शासनकाल में भी यही देखा। उसमें बारह-बारह सदस्यों के तीन दल थे। मेरे अपने बारह व्यक्तियों के मुख्य दल में दूसरा दल सम्मिलित रहता था जिसके कारण मैं बहुमत में रहता था। बारह व्यक्तियों का जो विरोधी गुट रहता था उसके सदस्यों को भी व्यक्तिगत रूप से मैं अपने दल के सदस्यों जैसा बल्कि उससे भी अधिक आदर देता था। इस कारण जब एक गुट मेरा साथ छोड़ देता था तो तुरत मुझे दूसरे दल का सहयोग मिल जाता था। ऐसा मेरे चार वर्षों के शासनकाल में तीन-चार बार हुआ था और केवल एक बार मेरी भूल के कारण कुछ समय के लिए विरोध के दो गुट एक साथ हो गये थे जिससे मेरी स्थिति कुछ समय के लिए संकटापन्न हो गयी थी परंतु वह स्थिति अधिक देर तक नहीं रह पायी थी जिसमें सदस्यों से मेरा व्यक्तिगत व्यवहार ही प्रमुख कारण था।